07 प्रबन्धन और सार्वजनिक व्यवस्थाएँ – शिक्षा : एक दशा–अध्ययन

दिलीप रांजेकर

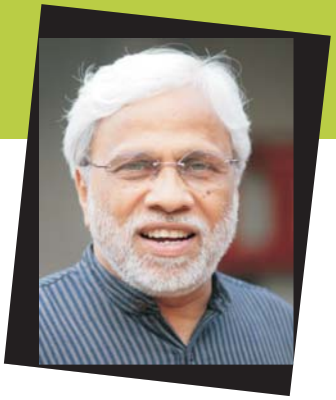

मैं एक प्रशिक्षित प्रबन्धन विशेषज्ञ हूँ। इसलिए नहीं कि मैंने पूरे चार वर्ष औपचारिक प्रबन्धन शिक्षा हासिल की है, बल्कि इसलिए कि मैं बहुत पहले 1976 में एक संगठन में तब शामिल हुआ जब वह परिवर्तन की कगार पर था। औपचारिक शिक्षा ने केवल प्रबन्धन की अवधारणा से मुझे परिचित कराया था, उसके आगे कुछ नहीं। मेरे लिए प्रबन्धन का असली स्कूल वह संगठन था जिसके साथ मैंने 26 वर्षों से भी अधिक समय तक काम किया।

जब मैंने अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ अपना कार्यकाल प्रारम्भ किया तो मैंने गैर–सरकारी संगठनों के संसार में "प्रबन्धन" शब्द के प्रति जबरदस्त प्रतिरोध पाया। हमारे विश्लेषण में, निम्न गुणवत्ता वाली सार्वजनिक स्कूल व्यवस्था की सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण समस्याओं का सम्बन्ध एक साझा दूरदर्शी कल्पना के न होने, रणनीति के अभाव, अनुपयुक्त ढाँचे, लोगों के निम्न–स्तरीय विकास और ऐसी नीतियों से था जो जन–सशक्तीकरण में सहायक नहीं थीं। इन मुद्दों का सम्बन्ध कुशासन तथा सत्ता के केन्द्रीकरण से था। मुद्दा यह भी था कि जिन निर्णयों से लोग प्रभावित होते हैं, उन्हें लेने की प्रक्रिया में वे भागीदार नहीं होते।

दूसरे शब्दों में, यह एक बड़ी व्यवस्था के प्रभावपूर्ण प्रबन्धन की विकराल समस्या थी।

मैं अपने दावे के समर्थन में केवल सात मुद्दे प्रस्तुत कर रहा हूँ–

1. **शिक्षा की एक साझा दूरदर्शी कल्पना निर्मित करना** : शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीति (नेशनल पॉलिसी फॉर एजुकेशन) अनेक दृष्टियों से देश के लिए एक दूरदर्शी कल्पना का दस्तावेज है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क) एक अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो देश के लिए शिक्षा के दर्शन का वर्णन करता है। ये दोनों दस्तावेज मिलकर भारत के शिक्षा कार्यक्रम का स्वरूप तय कर देते हैं। परन्तु शिक्षा क्षेत्र में संलग्न (शिक्षकों सहित) अधिकांश लोग इन दोनों दस्तावेजों के बारे में अनजान हैं – यह एक दुखद और चकित करने वाला तथ्य है। जब शिक्षा के जमीनी कार्यक्रम को अंजाम देने वाले अधिकांश लोगों को ही उसकी कार्यसूची का स्पष्ट ज्ञान नहीं है तो आप देश से शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी उपलब्धि हासिल करने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?

2. **परिणामों के लिए जवाबदेही** : यह उक्ति कि "जो नाप लिया जाता है वह कर लिया जाता है" शिक्षा के संचालन के लिए बहुत उपयुक्त बैठती है। सम्पूर्ण देश में दसवीं की बोर्ड परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थियों में से औसतन 50 प्रतिशत से भी अधिक फेल हो जाते हैं। ऐसे प्रदर्शन के लिए कौन जवाबदेह है? राज्य के शिक्षामंत्री? शिक्षा सचिव? शिक्षक? फिलहाल तो सिर्फ फेल होने वाले विद्यार्थी या उसके माता–पिता को ही जिम्मेदार माना जाता है।

   पाँचवी कक्षा के लगभग 50 प्रतिशत विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में सरल पाठ भी नहीं पढ़ पाते। इसे सुनिश्चित करने की जवाबदेही किसकी है? जवाबदेही के लिए सक्षम बनाना है तो आपको दण्ड के जोखिम और पुरस्कार वाला ढाँचा चाहिए जो योग्यता की समुचित पहचान करके बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित करे।

3. **योग्यता–आधारित व्यक्तियों वाली पद्धतियाँ** : कुछ वर्ष पहले मैंने शिक्षक–शिक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर की विशेष समिति में शिक्षकों की नियुक्ति हेतु बी.एड. परीक्षा में प्राप्तांकों की आधार वाली मौजूदा प्रचलित व्यवस्था से आगे बढ़कर अन्य मापदण्ड विकसित करने का मुद्दा उठाया। केवल दो सदस्यों ने मेरा समर्थन किया। जब मैंने सेवा उद्योग से एक उदाहरण दिया जिसने पिछले दस सालों में आतिथ्य (होटल) तथा सेवा उद्योग में लगभग पाँच लाख पेशेवर लोग निर्मित किए, तो सबने मुझे कॉर्पोरेट प्रबन्धन की पृष्ठभूमि वाला निरर्थक व्यक्ति कहकर मेरा मखौल उड़ाया। उनका तर्क था कि सेवा उद्योग में लगे लोगों के काम से शिक्षकों के काम की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि यह अत्यधिक जटिल और देश के भविष्य के लिए अत्यन्त बुनियादी काम है। मैंने तर्क दिया कि फिर ऐसी बेहद महत्वपूर्ण व्यवस्था के लिए केवल बी.एड. के अंकों के आधार पर लोगों का चयन कैसे किया जा सकता है? पर समिति ने मेरे प्रश्नों को अनसुना कर दिया।

4. **बड़े कार्यक्रमों को लागू करने के लिए उच्च–स्तरीय प्रबन्धन कौशलों की आवश्यकता होती है** : उदाहरण के लिए मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम का वार्षिक बजट लगभग 3 हजार करोड़ रुपए का है और इसकी परिधि में प्राथमिक स्कूलों के लगभग 11 करोड़ बच्चे आते हैं। सरकार की नीति के अनुसार प्रत्येक बच्चे को प्रतिदिन आहार के रूप में लगभग 400 कैलोरी, 12 ग्राम प्रोटीन और सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है। वास्तव में, इसमें सरकार के तीन विभाग शामिल हैं : शिक्षा विभाग, जिस पर पका हुआ भोजन प्रदान करने की जिम्मेदारी है; खाद्य मंत्रालय, जिसे खाद्यान्न की पर्याप्त मात्रा की आपूर्ति सुनिश्चित करना होती है; तथा पंचायत राज विभाग

जिस पर अन्तिम रूप से स्कूलों तक खाद्यान्न पहुँचाने की जिम्मेदारी होती है। आज हम पाते हैं कि देश भर के विभिन्न स्कूलों में आहार की गुणवत्ता बहुत अलग–अलग है। कैलोरी और प्रोटीन की मात्रा निर्धारित से बहुत कम होती है और सूक्ष्म पोषक तत्व तो लगभग नदारद रहते हैं। यह कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक इसकी योजना ठीक से नहीं बनाई जाती और इसमें शामिल लोग कार्यक्रम का प्रयोजन नहीं समझते।

5. **क्रियान्वयन ही सब कुछ है** : लगभग सभी राज्य सरकारों द्वारा कई प्रोत्साहन कार्यक्रम चलाए जाते हैं जिनमें मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, मुफ्त यूनिफॉर्म, लड़कियों के लिए साइकिलें आदि शामिल हैं। बहुत से मामलों में ये लाभ बच्चों तक या तो पहुँचते ही नहीं हैं या बहुत देर से पहुँचते हैं। मिसाल के लिए, यदि पाठ्यपुस्तकें बच्चों तक छह महीने देर से पहुँचती हैं (जैसा कि अकसर होता है) तो उनका बहुत नुकसान होता है। बच्चों को उतने समय बिना पढ़ाई के रहना पड़ता है या अपने माता–पिता को किताबें खरीदने के लिए मजबूर करना पड़ता है, बावजूद इसके कि उनकी आर्थिक स्थिति इस लायक नहीं होती। कई मामलों में, चूँकि मुफ्त यूनिफॉर्म का वितरण समय पर नहीं होता, बच्चों को खुद से खरीदी हुई एक ही यूनिफॉर्म अगले दिन पहनने के लिए रात को धोना पड़ता है। यहाँ तक कि फट जाने पर भी उसे ही पहनते रहना पड़ता है।

6. **प्रमुख संस्थाओं का प्रदर्शन** : अपनी नीतियों को अमल में लाने के लिए सरकार ने कई संस्थाएँ, जैसे कि एन.सी.ई.आर.टी., एन.यू.ई.पी.ए., डी.एस.सी.ई.आर.टी, डी.आई.ई.टी. और ब्लॉक तथा क्लस्टर स्तर पर संसाधन एजेंसियाँ निर्मित की हैं। आज ये संस्थाएँ अनेक कमजोरियों से ग्रस्त हैं। इसके कई कारण हैं – महत्वपूर्ण पदों का खाली रहना, पर्याप्त मूलभूत सुविधाओं और गुणवत्ता के मानदण्डों का न होना, लोगों की नियुक्ति आवश्यक योग्यता के आधार पर न होना (खासतौर से जिला स्तर पर तो अनेक पद काम न करने वालों को बस वहाँ आराम की अवस्था में बैठा देने के लिए होते हैं)। सबसे खास बात है इन संस्थाओं के कार्य–प्रदर्शन की कोई निगरानी न होना। राष्ट्रीय शिक्षानीति में स्पष्ट रूप से सभी सम्बन्धित संस्थाओं और प्रक्रियाओं के लगातार पुनरीक्षण के लिए संसाधन मुहैया कराने की जरूरत का उल्लेख किया है।

7. **उपलब्ध वित्तीय संसाधनों से सर्वश्रेष्ठ परिणाम हासिल करना** : देश में स्कूली शिक्षा पर होने वाला व्यय कुल मिलाकर लगभग 63 हजार करोड़ रुपए प्रतिवर्ष से अधिक होता है। इस राशि का 90 प्रतिशत शिक्षकों के वेतन पर खर्च होता है – पर यह सुनिश्चित करने का शायद ही कोई प्रयास किया जाता है कि शिक्षकों को अपनी अपेक्षित भूमिका निभाने के लिए ठीक से तैयार और विकसित किया जाए। कार्यरत शिक्षकों के विकास के लिए लगभग 1 हजार करोड़ रुपए का प्रावधान होता है पर कोई भी शिक्षक अपने काम के लिए इस प्रशिक्षण को उपयोगी नहीं पाता। सफल कॉर्पोरेट संगठन काम करने वाले अपने लोगों पर होने वाले खर्च का पाँच प्रतिशत तक व्यवस्था के सुचारु ढंग से काम करने पर खर्च करते हैं। पर सरकारी तन्त्र ऐसी अवधारणा के प्रति सर्वथा अनजान है।

विशेष रूप से भारत जैसे सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और भाषाई विविधता वाले देश में शिक्षा एक जटिल प्रक्रिया है। यहाँ बहुत उच्च स्तर की कार्यकुशलता, सटीकता और बारीकी से बनाई गई योजना तथा निगरानी के साथ कार्यवाही करने की जरूरत है। ये सब और कुछ नहीं बल्कि प्रबन्धन के मुद्दे ही हैं।

हमारा देश 30 राज्यों और 640 जिलों में फैले 13 लाख स्कूलों को सम्भालने का प्रयास कर रहा है, जिनसे 22 करोड़ भविष्य के नागरिक, बच्चों को लाभ पहुँचाने की अपेक्षा की जाती है। इस काम को अंजाम देने में 65 लाख शिक्षाकर्मी लगे हुए हैं। लगातार राजनैतिक हस्तक्षेप, धन का अत्यधिक रिसाव, हर स्तर पर लोगों के द्वारा लाभ उठाने की कोशिश, और जवाबदेही को प्रोत्साहित करने के लिए जोखिम–पुरस्कार पद्धति का पूर्णतया अभाव आदि इस परिस्थिति को और भी विकट बना देते हैं। नौकरशाहों का अकसर तबादला कर दिया जाता है जिसके कारण योजना और दृष्टिकोण में व्यवधान आ जाता है।

शिक्षा जैसे हितकारी क्षेत्र के इतने विशाल बन्दोबस्त का संचालन–प्रबन्धन करने के लिए अत्यन्त कुशल और भलीभाँति गढ़ी गई सार्वजनिक व्यवस्थाएँ होनी चाहिए।

दिलीप रांजेकर अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं। उनसे dkr@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

खण्ड ब

कुछ परिप्रेक्ष्य